# गोरा
# अध्याय 7

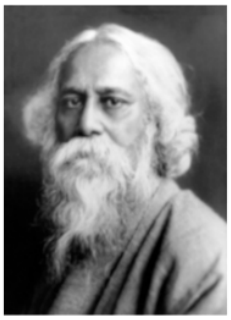

रविंद्रनाथ टैगोर

हिन्दी ADDA

# गोरा

# अध्याय 7

https://www.hindiadda.com/gora-part-vii/

सुबह गोरा कुछ काम कर रहा था। अचानक विनय ने आकर छूटते ही कहा, "उस दिन परेशबाबू की लड़कियों को मैं सर्कस दिखाने ले गया था।"

लिखते-लिखते गोरा ने कहा, "मैंने सुना?"

गोरा, "अविनाश से। उस दिन वह भी सर्कस देखने गया था।"

आगे कुछ न कहकर गोरा फिर लिखने में जुट गया। गोरा ने यह बात पहले ही सुन ली है और वह भी अविनाश से, जिसने नमक-मिर्च लगाकर कहने में कोई कसर नहीं रखी होगी; विनय को इस बात से अपने पुराने संस्कार के कारण बड़ा संकोच हुआ। सर्कस जाने की बात की समाज में ऐसी आम चर्चा न हुई होती तभी अच्छा होता!

तभी उसे याद आया, कल रात वह मन-ही-मन बहुत देर तक जागते रहकर ललिता से झगड़ता रहा। है। ललिता समझती है, वह गोरा से डरता है और बच्चे जैसे मास्टर को मानते हैं वैसे ही वह गोरा को मानकर चलता है। कोई किसी को क्या इतना गलत समझ सकता है! गोरा और वह तो एकात्मा हैं। यह ठीक है कि गोरा की असाधारणता के कारण उसकी उस पर श्रध्दा भी है, लेकिन इसी से ललिता का ऐसा सोच लेना गोरा के साथ तो अन्याय है ही विनय के साथ भी है। विनय बच्चा नहीं है, न ही गोरा उसका अभिभावक है!

चुपचाप गोरा लिखता रहा और ललिता के वही दो-तीन तीखे प्रश्न बार-बार विनय को याद आने लगे। आसानी से विनय उन्हें मन से न हटा सका।

अचानक विनय के भीतर एक विद्रोह ने सिर उठाया- सर्कस देखेन गया तो क्या हुआ? कौन होता है अविनाश इस बात की गोरा से चर्चा करने वाला- और गोरा भी क्यों मेरे काम के बारे में उस वाचाल से बातचीत करने गया, मैं क्या गोरा का नज़रबंद हूँ? मैं कहाँ आता-जाता हूँ, गोरा के सामने क्या इसका भी जवाब देना होगा? यह तो दोस्ती का अपमान है।

विनय को गोरा और अविनाश पर इतना गुस्सा न आया होता यदि अपनी भीरुता सहसा उसके सामने इतनी स्पष्ट प्रकट न हो गई होती। वह जो थोड़ी देर के लिए भी कोई बात गोरा से छिपाने के लिए मजबूर हुआ, इसके लिए वह आज मन-ही-मन मानो गोरा को ही अपराधी ठहराना चाहता है। सर्कस जाने की बात को लेकर अगर गोरा विनय से झगड़े की दो-एक बातें कहता तो भी उनकी दोस्ती की एकलयता बनी रहती और विनय को तसल्ली होती- लेकिन गोरा इतना गंभीर होकर विचारमग्न बन

बैठा है और अपनी चुप्पी से उसका अपमान कर रहा है, यह देखकर ललिता की बात की चुभन उसे फिर-फिर बींधने लगी।

इसी समय वहाँ हाथ में हुक्का लिए महिम ने कमरे में प्रवेश किया। डिब्बे में बंद गीले कपड़े के भीतर से निकालकर एक पान विनय के हाथ में देते हुए बोले, "भाई विनय, इधर तो सब ठीक हो गया, अब तो तुम्हारे काका महाशय की एक चिट्ठी आ जाय तो निश्चंत हो सकें। तुमने उन्हें लिख तो दिया है न?"

विनय को विवाह का यह आग्रह आज बहुत बुरा लगा, यद्यपि वह जानता था कि महिम का कोई दोष नहीं है- उन्हें तो वचन दिया जा चुका है। किंतु उस वचन देने में एक हीनता-सी उसे जान पड़ी। आनंदमई ने तो उसे एक प्रकार से मना ही किया था- इस विवाह के मामले में उसका अपना भी कोई आकर्षण नहीं था-हड़बड़ी में क्षण-भर में ही यह बात कैसे पक्की हो गई? यह भी नहीं कहा जा सकता कि गोरा ने कोई जल्दी की थी। अगर विनय ने कुछ आपत्ति की होती तब भी गोरा उस पर दबाव डालता ही, ऐसी बात भी नहीं थी। लेकिन फिर भी.... ! इस "पर भी' को लेकर ही ललिता की बात उसे सालने लगी। कोई विशेष घटना उस दिन नहीं हुई थी, किंतु जो हुआ उसके पीछे अनेक दिनों का शासन था। विनय केवल अपने स्नेह के कारण और नितांत भलमानसाहत के कारण गोरा के आधिपत्य को सहते रहने का आदी हो गया है। इसीलिए प्रभुत्व का यह संबंध बंधुत्व के सिर पर चढ़ बैठा है। इतने दिन विनय ने इसको महसूस नहीं किया, किंतु अब इसे स्वीकार किए बिन नहीं चलेगा। तो क्या शशिमुखी से विवाह करना ही होगा?

विनय ने कहा, "नहीं, अभी काका को तो नहीं लिखा।"

महिम बोले, "वह मेरी ही गलती है। यह चिट्ठी तुम्हारे लिखने की तो चीज़ नहीं है, वह मैं ही लिखूँगा। उना पूरा नाम क्या है ज़रा बताना।"

विनय ने कहा, "आप चिंता क्यों करते हैं? आश्विन-कार्तिक में तो विवाह हो ही नहीं सकता। एक अगहन है- लेकिन उसमें भी मुश्किल है। हमारे परिवार के इतिहास में न जाने कब किसके साथ कौन-सी दुर्घटना अगहन के महीने में घटी थी, तब से हमारे वंश मे अगहन में विवाह आदि शुभ-कर्म बंद हैं।"

हुक्का कमरे के कोने में दीवार के साथ टेककर महिम ने कहा, "विनय, तुम लोग भी यह सब मानते हो तो सारी लिखाई-पढ़ाई क्या किताबों को रटते-रटते मर जाना ही है

इस कमबख्त देश में अव्वल तो वैसे ही शुभ दिन ढूँढ़े नहीं मिलता, उस पर अगर हर घर अपना निजी पोथी-पत्र लेकर बैठ जाएगा तो काम कैसे चलेगा?"

विनय ने कहा, "फिर आप भाद्र-आश्विन महीने भी क्यों मानते हैं?"

महिम बोले, "मैं कहाँ मानता हूँ? कभी नहीं मानता। लेकिन क्या करूँ भैया- इस देश में एक बार भगवान को माने बिना मजे में चल सकता है,लेकिन भाद्र-आश्विन, बृहस्पति-शनि, तिथि-नक्षत्र माने बिना कोई गति नहीं! फिर यह भी कहूँ कि कहने को तो मैंने कह दिया कि नहीं मानता,लेकिन काम करने के समय तिथि-मुहूर्त इधर-उधर होने से मन प्रसन्न नहीं रहता- देश की हवा मैं जैसे मलेरिया होता है, वैसे ही इसका भय भी होता है, उससे ऊपर नहीं उठा जा सकता।"

विनय, "हमारे वंश में अगहन का दोष भी किसी तरह नहीं मिटता। काकी माँ तो किसी तरह राजी नहीं होंगी।"

इस तरह उस दिन तो विनय ने जैसे-तैसे करके बात टाल दिया।

विनय के बात करने के ढंग से गोरा ने यह समझ लिया कि विनय के मन में एक दुविधा बस गई है। कुछ दिनों से उसकी विनय से भेंट ही नहीं हो रही थी, इससे ही गोरा ने समझ लिया था कि परेशबाबू के घर विनय का आना-जाना और भी बढ़ गया है तिस पर आज के इस विवाह-प्रस्ताव को टालने की कोशिश से गोरा के मन में और भी संदेह हुआ।

जैसे साँप किसी को निगलना शुरू करने पर उसे किसी तरह छोड़ ही नहीं सकता, मानो गोरा भी उसी तरह अपने किसी भी संकल्प को छोड़ देने या उसमें ज़रा भी परिवर्तन करने में असमर्थ था। दूसरी ओर से किसी तरह की बाधा अथवा शिथिलता आने पर वह और भी हठ पकड़ लेता था। दुविधा में पड़े हुए विनय को जकड़ रखने के लिए गोरा पूरे अंत:करण से उतावला हो उठा।

लिखना छोड़ मुँह उठाकर उसने कहा, "विनय, जब एक बार तुमने दादा को वचन दे दिया है, तब अनिश्चय में रखकर क्यों व्यर्थ दु:ख देते हो?"

सहसा विनय ने बिगड़कर कहा, "मैंने वचन दिया है, या कि मुझे हड़बड़ाकर जल्दी में मुझसे वचन ले लिया गया है?"

विनय के इस अचानक विद्रोह को देखकर गोरा विस्मित हो गया। कड़ा पड़ते हुए उसने पूछा, "तुमने!"

गोरा, "मैंने! इस बारे में मेरी तुमसे दो-चार बात से अधिक नहीं हुई- यही क्या ज़बरदस्ती वचन ले लेना हो गया?"

विनय के पक्ष में प्रमाण वास्तव में ख़ास कुछ नहीं था, गोरा का कहना सच ही था कि उनकी बातचीत बहुत थोड़ी ही हुई थी और उसमें ऐसा कोई बहुत आग्रह भी नहीं था जिसे कि दबाव डालना कहा जा सके। फिर भी यह बात भी सच थी कि अप्रकटत: विनय से गोरा ही ने उसकी सम्मति ज़बरदस्ती ले ली थी। जिस अभियोग का प्रमाण जितना कम होता है, उसे लगाने वाले का क्रोध उतना ही अधिक होता हैं तभी विनय ने कुछ असंगत क्रोध से कहा, "कहलवा लेने के लिए अधिक बातचीत करना ज़रूरी तो नहीं है।"

मेज़ छोड़कर गोरा उठ खड़ा हुआ और बोला, "तो ले जाओ अपनी सम्मति वापस। यह कोई इतनी बड़ी या मूल्यवान बात नहीं है कि इसके लिए तुमसे भीख माँगी जाय या ज़बरदस्ती की जाय।"

महिम साथ के कमरे में ही थे, वज्र-स्वर में गोरा ने उन्हें पुकारा, "दादा!"

हड़बड़ाकर कमरे में आते महिम से गोरा ने कहा, "दादा, मैंने क्या आपको शुरू में ही नहीं कहा था कि शशिमुखी के साथ विनय का विवाह नहीं हो सकता-इसमें मेरी राय नहीं है?"

महिम, "ज़रूर कहा था। ऐसी बात तुम्हारे शिवा और कौन कह सकता था? और कोई भाई होता तो भतीजी के विवाह की बात शुरू में ही उत्साह दिखाता!"

गोरा, "फिर क्यों मेरे द्वारा आपने विनय से अनुरोध करवाया?"

महिम, "यही सोचकर कि इससे काम हो सकेगा, और तो कोई कारण नहीं है।"

गोरा का मुँह लाल हो आया। वह बोला, "मैं इस सबमें नहीं पड़ता, ब्याह ठीक करना मेरा धंधा नहीं है, मुझे अन्य काम है।"

गोरा ऐसा कहकर घर से बाहर हो गया। हतबुध्दि महिम विनय से इस बारे में कोई प्रश्न पूछते, इससे पहले वह भी निकलकर सड़क पर पहुँच गया। दीवार के कोने में टिका हुआ हुक्का महिम ने उठाया और चुपचाप बैठकर कश लगाने लगे।

इससे पहले भी कई बार गोरा के साथ विनय के कई झगड़े हुए हैं लेकिन ऐसा ज्वालामुखी की तरह अचानक फट पड़ने वाला झगड़ा पहले कभी नहीं हुआ। पहले तो विनय अपने कृत्य पर स्तंभित-सा हो रहा, फिर घर पहुँचने के बाद भीतर-ही-भीतर यह बात उसे सालने लगी। ज़रा-सी देर में वह गोरा को कितनी बड़ी चोट पहुँचा आया है, यह सोचकर उसकी खाने-पीने या विश्राम करने की कोई इच्छा न रही। इस मामले में विशेषतया गोरा को अपराधी ठहराना कितना ग़लत और बेतुका हुआ, बार-बार यह बात उसे चुभने लगी। बार-बार उसका मन उसे धिक्कारने लगा अन्याय, अन्याय,अन्याय!

लगभग दो बजे आनंदमई खा-पीकर सिलाई लेकर बैठी ही थीं कि विनय उनके पास जा बैठा। सुबह की थोड़ी-बहुत चर्चा तो उन्होंने महिम से सुन ली थी। भोजन के समय गोरा का चेहरा देखकर भी उन्होंने समझ लिया था कि एक तूफान आकर गुज़र चुका है।

विनय ने आते ही कहा, "माँ, मैंने ज्यादती की है। शशिमुखी से विवाह की बात को लेकर गोरा को मैंने जो कुछ कहा उसका कोई अर्थ नहीं होता।"

आनंदमई ने कहा, "हो सकता है विनय- कोई दर्द मन में दबा रखने की कोशिश करने से वह इसी तरह फूट निकलता है। यह ठीक ही हुआ। इस झगड़े की बात दो दिन बाद तुम भी भूल जाओगे, गोरा भी भूल जाएगा।"

विनय, "लेकिन माँ, शशिमुखी से विवाह करने में मुझे काई आपत्ति नहीं है, यही बात तुम्हें बताने मैं आया हूँ।"

आनंदमई, "बेटा, जल्दी से झगड़ा खत्म करने की कोशिश में एक और मुसीबत में मत पड़ो। झगड़ा तो दिन का है, विवाह तो हमेशा की बात है।"

उनकी कोई बात विनय ने नहीं सुनी। वह फौरन यह प्रस्ताव लेकर गोरा के पास तो नहीं जा सका इसलिए महिम से ही जाकर उसने कहा कि विवाह में कोई बाधा नहीं है और माघ में ही वह प्रसन्न हो सकेगा तथा इस बात का ज़िम्मा भी विनय ही लेगा कि उसके काका महाशय को कोई आपत्ति न हो।

महिम बोले, "तो फिर सगाई हो जाय न!"

विनय ने कहा, "ठीक है, वह आप गोरा से सलाह करके कर लिजिए।"

घबराकर महिम ने कहा, "फिर गोरा से सलाह?"

विनय बोला, "हाँ, उसके बिना तो नहीं हो सकता।"

महिम बोले, "यदि नहीं हो सकता तब तो कोई उपाय नहीं है, लेकिन.... "
कहते-कहते झट उन्होंने एक पान उठाकर मुँह में रख लिया।

20.उस दिन तो महिम ने गोरा से कुछ नहीं कहा, किंतु अगले दिन उसके कमरे में गए। उन्होंने सोचा था कि फिर से गोरा को राज़ी करने के लिए लंबी बकझक करनी होगी। पर जब उन्होंने आकर बताया कि कल दोपहर विनय ने आकर विवाह के बारे में पक्का वचन दे दिया है और सगाई के बारे में गोरा की सलाह लेने को कहा है, तब तुरंत गोरा ने अपनी राय ज़ाहिर कर दी, "ठीक है, तो सगाई हो जाय।"

अचरज से महिम ने कहा, "अभी तो 'ठीक है' कह रहे हो- इसके बाद फर तो टाँग नहीं अड़ाओगे?"

गोरा ने कहा, "मैंने बाधा देकर टाँग नहीं अड़ाई, अनुरोध करके ही अड़ाई थी।"

महिम, "इसीलिए तुमसे मेरी यही प्रार्थना है कि तुम बाधा भी न देना, और अनुरोध भी मत करना। न तो मुझे कौरवों की ओर से नारायण की सेना की ज़रूरत है, और पांडवों की ओर से स्वयं नारायण की ज़रूरत ही दीखती है। मुझ अकेले से ही जो बन सकेगा वही ठीक हैं मुझसे भूल हुई- तुम्हारी सहायता भी इतनी विपरीत पड़ेगी, यह मैं पहले नहीं जानता था। खैर, विवाह हो यह तो तुम चाहते हो न?"

"हाँ, चाहता हूँ।"

महिम, "तो चाहने तक ही रहो, कोशिश करने की ज़रूरत नहीं है।"

गोरा को जब क्रोध आता है तो उसके क्षणिक आवेश में वह कुछ भी कर सकता है, यह सत्य है; लेकिन उस गुस्से को सहेजकर अपने संकल्प नष्ट करना उसका स्वभाव नहीं है। जैसे भी वह विनय को बाँधना चाहता है, रूठने का समय यह नहीं है। कल के झगड़े की प्रतिक्रिया स्वरूप ही विवाह की बात पक्की हुई, विनय के विद्रोह ने ही विनय के बंधन मज़बूज कर दिए, यह बात सोचकर कल की घटना पर

गोरा को मन-ही-मन खुशी ही हुई। विनय के साथ हमेशा का सहज संबंध फिर से स्थापित करने में गोरा ने ज़रा भी देर नहीं की। लेकिन दोनों के बीच जो एक सहजता का भाव था, उसमें तो कुछ कमी आ ही गई।

अब गोरा ने यह भी समझ लिया कि विनय को दूर से बाँधकर रखना कठिन होगा; जहाँ से खतरे का उद्‌गम हैं वहीं जकर पहरा देना होगा। मन-ही-मन उसने सोचा, अगर परेशबाबू के घर मैं बराबर आना-जाना रखूँ तो विनय को ठीक रास्ते पर रखे रह सकूँगा।

उसी दिन, अर्थात् झगड़े के अगले ही दिन, करीब तीसरे पहर गोरा विनय के घर जा पहुँचा। विनय को इसकी बिल्कुल उम्मीद नहीं थी कि गोरा उसी दिन आ पहुँचेगा, इसीलिए उसे मन-ही-मन जितनी खुशी हुई उतना ही आश्चर्य भी हुआ।

इससे भी बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि गोरा ने अपने-आप परेशबाबू की लड़कियों की बात चलाई, और उस बात में ज़रा भी विरूपता नहीं थी। इस चर्चा में विनय का उत्साह जगा देने के लिए अधिक परिश्रम की ज़रूरत भी नहीं थी।

विनय सुचरिता के साथ जिन बातों की चर्चा करता रहा था, वह सब विस्तार से गोरा को बताने लगा। स्वयं सुचरिता विशेष आग्रह से ये सब बातें उठाती हैं, और चाहे जितनी बहस करे; धीरे-धीरे अनजाने में उनसे सहमत भी होती जा रही है, यह बात गोरा को बताकर विनय ने उसे उत्साहित करने की कोशिश की।

विनय ने बातों-बातों में कहा, "नंद की माँ ने ओझा को बुलाकर भूत के भ्रम में कैसे नंद के प्राण ले लिए और इस विषय में तुम्हारे साथ क्या बात हुई थी, जब मैंने यह बताया तब कहने लगी, 'आप लोग सोचते हैं, लड़कियों को घर में बंद करके चौके-बर्तन और सफाई करने देने से ही उनका सारा कर्तव्य पूरा हो जाता है। एक ओर तो ऐसा करके उनकी समझ-बूझ सब चौपट करके रख देंगे, उधर जब वे ओझा को बुलाएँगी तब उन पर बिगड़ने से भी नहीं चूकेंगे। जिनके लिए सारी दुनिया अड़ोस-पड़ोस के दो-एक घरों तक ही सीमित है, वे कभी संपूर्ण मानव नहीं हो सकतीं-और अधूरी रहकर पुरुषों के बड़े कामों को बिगाड़कर, अधूरे करके, पुरुष को बोझ से लादकर नीचे की ओर खींचकर, वे अपनी दुर्गति का बदला तो लेंगी ही। आप ही ने नंद की माँ को ऐसा बनाया है और ऐसी जगह घेरकर रखा है कि आज आप जान लगाकर भी उसे सुबुध्दि देना चाहें तो वह उस तक पहुँचेगी ही नहीं।' इस बारे में मैंने तर्क करने की बहुत कोशिश की, लेकिन सच कहूँ गोरा, मन-ही-मन उनसे

सहमत होने के कारण कोई जोरदार दलील मैं नहीं दे सका और उनसे तो फिर भी बहस हो जाती है, लेकिन ललिता से बहस करने का मुझे कतई साहस नहीं होता। जब ललिता ने भँवें सिकोड़कर कहा, 'आप लोग जो सोचते हैं कि दुनिया-भर का काम तो आप लोग करेंगे, और आप लोगों का काम हम करेंगी, यह नहीं होने का। या तो हम भी दुनिया का काम सँभालेंगी, नहीं तो बोझ होकर रह जाएँगी। हम बोझ होंगी तो फिर आप बिगड़कर कहेंगे- पथे नारी विवर्जिता। आप यदि नारी को भी चलने दें तो फिर उसका विवर्जन करने की ज़रूरत न होगी- न घर में, न पथ पर।'- तब मुझसे कोई जवाब नहीं बन पड़ा और मैं चुप रह गया। आसानी से कोई बात ललिता नहीं कहती, लेकिन जब कहती है तब बहुत सोच-समझकर जवाब देना होता है। तुम चाहे जो कहो गोरा, मुझे पूरा विश्वास हो गया है कि हमारी नारियाँ अगर चीनी नारियों के पैरों की तरह बाँधकर रखी जाएँगी तो उससे हमारा कोई काम आगे नहीं बढ़ेगा।'

गोरा ने कहा, "लड़कियों को शिक्षा न दी जा, यह तो मैंने कभी नहीं कहा।"

विनय, "चारु-पाठ तीसरा भाग पढ़ा देने से ही क्या शिक्षा हो जाती है?"

गोरा, "अच्छी बात है, अब से विनय- बोले प्रथम भाग पढ़ाया जाएगा।"

इस प्रकार दोनों मित्रों के घूम-फिरकर परेशबाबू की लड़कियों की बात करते-करते रात हो गई।

अकेले घर लौटते समय ये सब बातें गोरा के मन में घूमती रहीं। घर पहुँचकर चारपाई पर लेटे-लेटे भी जब तक गोरा सो नहीं गया, परेशबाबू की लड़कियों की बात मन से नहीं हटा सका। ऐसी बात गोरा के जीवन में पहले कभी नहीं हुई थी; उसने लड़कियों की बात कभी सोची ही नहीं। आज विनय ने यह प्रमाणित कर दिया कि संसार में यह भी एक सोचने की बात है-इसे यों ही उड़ाया नहीं जा सकता, या तो इसका समझौता करना होगा या लड़ना होगा।

विनय ने जब दूसरे दिन गोरा से कहा, "एक बार परेशबाबू के घर चले ही चलो न; बहुत दिनों से गए नहीं, अक्सर वह तुम्हारी बात पूछते हैं",तब बिना आपत्ति किए गोरा तैयार हो गया। केवल तैयार ही नहीं हो गया, बल्कि उसका मन भी पहले-सा उदास नहीं था। पहले सुचरिता और परेशबाबू की अन्य लड़कियों के अस्तित्व के बारे में संपूर्ण भाव से गोरा उदासीन था, फिर बीच में उनके विरुध्द उसके मन में अवज्ञा का भाव उत्पन्न हुआ था, अब उसके मन में एक उत्सुकता का उदय हो आया था।

कौन-सी चीज़ विनय के चित्त को इतना आकर्षित करती है, यह जानने के लिए उसके मन में एक विशेष उत्सुकता उत्पन्न हो गई थी।

जिस समय दोनों परेशबाबू के घर पहुँचे उस समय साँझ हो रही थी। दूसरी मंज़िल के एक कमरे में लैंप की रोशनी में हरानबाबू अपना एक अंग्रेज़ी लेख परेशबाबू को सुना रहे थे। वास्तव में इस समय परेशबाबू केवल उपलक्ष्य-मात्र थे- लेख सुचरिता को सुनाना ही उनका उद्देश्य था। सुचरिता मेज़ के परले सिरे पर चौंध से आँखों को ओट देने के लिए ताड़ के पत्ते का पंखा चेहरे के सामने रखे चुपचाप बैठी थी। अपने स्वभाव के कारण वह लेख को एकाग्र होकर सुनने की चेष्टा रही थी, किंतु रह-रहकर उसका मन इधर-उधर हुआ जा रहा था।

इसी बीच नौकर ने आकर जब गोरा और विनय के आने की सूचना दी तो वह चौंक उठी। कुर्सी छोड़कर वह जाने को ही थी कि परेशबाबू ने कहा, "कहाँ जा रही हो राधा, और कोई नहीं है, अपने विनय और गौर आए हैं।"

सकुचाती हुई सुचरिता फिर बैठ गई। हरान के लंबे अंग्रेज़ी लेख-पठन के रुक जाने से उसे कुछ तसल्ली हुई। गोरा के आने की बात सुनकर सुचरिता के मन में कुछ उत्तेजना न हुई हो, यह बात नहीं थी; किंतु हरानबाबू के होते गोरा के आने से मन-ही-मन उसे एक बेचैनी और संकोच होने लगा था- कहीं दोनों में कुछ बहस न हो जाय इस भय से अथवा किसी दूसरे कारण से, यह कहना कठिन है।

हरानबाबू का मन गोरा का नाम सुनते ही भीतर-ही-भीतर बिल्कुल विमुख हो उठा। जैसे-तैसे गौर के नमस्कार का जवाब देकर वे गंभीर होकर बैठे रहे। हरान को देखते ही गोरा की युध्द करने की इच्छा हथियार भाँजकर तैयार हो गई।

अपनी तीनों लड़कियों को लेकर वरदासुंदरी कहीं निमंत्रण पर गई थीं; साँझ होने पर परेशबाबू द्वारा उन्हें लिवा लाने की बात तय थी। परेशबाबू के जाने का समय हो गया था। इसी मध्य गोरा और विनय के आ जाने से वह संकोच में पड़ गए। किंतु और देर करना ठीक न समझकर धीरे से उन्होंने हरान और सुचरिता से कहा, "तुम लोग ज़रा इनके साथ बैठो, मैं फौरन लौटकर आता हूँ।" और चले गए।

गोरा और हरानबाबू में देखते-देखते बहस शुरू हो गई। बहस जिस प्रसंग को लेकर हुई वह कुछ यों था : कलकत्ता के पास के किसी ज़िले के मजिस्ट्रेट ब्राउनलो के साथ परेशबाबू की जान-पहचान ढाका में रहते समय हुई थी। परेशबाबू की स्त्री और कन्याएँ घर से बाहर निकालती हैं, इसलिए साहब और उनकी स्त्री इनकी बहुत

आवभगत करते थे। साहब अपने जन्मदिन पर हर साल कृषि प्रदर्शनी का मेला आयोजित किया करते थे। इस बार वरदासुंदरी के ब्राउनलो साहब की मेम के साथ बातचीत करते समय अंग्रेज़ी काव्य-साहित्य में अपनी लड़कियों की रुचि की बात करने पर सहसा मेम साहब ने कहा कि इस बार मेले में लैफ्टिनेंट गवर्नर सपत्नीक आएँगे- अगर आपकी लड़कियाँ उनके सामने किसी छोटे-से अंग्रेजी काव्य-नाटय का अभिनय कर दें तो बड़ा अच्छा हो। इस प्रस्ताव पर वरदासुंदरी अत्यंत उत्साहित हो उठी थीं। आज वह लड़कियों को उसी की रिहर्सल कराने के लिए किसी बंधु के घर ले गई हैं। यह पूछने पर कि स मेले में गोरा का उपस्थिति होना संभव होगा या नहीं, गोरा ने कुछ ज्यादा ही रुखाई के साथ कह दिया, 'नहीं'। इसी बात को लेकर देश में अंग्रेज़-बंगाली संबंध और परस्पर सामाजिक सम्मिलन की बाधा को लेकर बाकायदा दोनों जनों में लड़ाई छिड़ गई।

हरान ने कहा, "बंगाली का ही दोष है। हमारे यहाँ इतने कुसंस्कार और कुप्रथाएँ हैं कि अंग्रेज़ों से मिलने के योग्य हम हैं ही नहीं।"

गोरा ने कहा, "यदि यही सच हो तो इस अयोग्यता के रहते अंग्रेज़ से मिलने के लिए ललचाना हमारे लिए लज्जाजनक है।"

हरान बोले, "लेकिन जो योग्य हो गए हैं उनको अंग्रेज़ से काफी सम्मान मिलता है- जैसे इन सबको।"

गोरा, "एक आदमी के सम्मान से जहाँ और सबका असम्मान प्रकट होता हो, वहाँ ऐसे सम्मान को मैं अपमान मानता हूँ।"

हरानबाबू देखते-देखते अत्यंत क्रुध्द हो उठे, और गोरा रह-रहकर उन्हें बाग्बाणों से घायल करने लगा।

जब दोनों में इस प्रकार की बहस हो रही थी तब सुचरिता मेज़ के पास बैठी पंखे की ओट से एकटक गोरा को देख रही थी। जो बातें हो रही थीं वे उसके कानों में पड़ ज़रूर रही थीं, लेकिन उसका मन उधर बिल्कुल नहीं थ। वह जो अपलक नेत्रों से गोरा को देख रही थी, उसकी खबर उसे स्वयं होती तो सुचरिता लज्जित हो जाती; किंतु जैसे आत्म-विस्मृत होकर ही वह गोरा को देख रही थी। गोरा अपनी दोनो बलिष्ठ भुजाएँ मेज़ पर टेककर थोड़ा आगे झुककर बैठा था; उसके प्रशस्त उज्ज्वल ललाट पर लैंप की रोशनी पड़ रही थी; चेहरे पर कभी अवज्ञा की हँसी, कभी घृणा की छवि लहरा जाती थी। उसके चेहरे की प्रत्येक भाव-भंगिमा से एक आत्म-मर्यादा का गौरव प्रकट

होता था। जो कुछ वह कह रहा है वह केलव सामयिक बहस या आक्षेप की बात नहीं है, प्रत्येक बात उसके अनेक दिल के चिंतन और व्यवहार से असंदिग्ध रूप से सिध्द हुई है। उसमें किसी प्रकार की दुविधा,दुर्बलता या आकस्मिकता नहीं है, यह मात्र उसकी आवाज़ से ही नहीं, उसके चेहरे और उसके समूचे शरीर के दृढ़ भाव से प्रकट हो रहा था। विस्मित होकर सुचरिता उसे देखने लगी। अपने जीवन में इतने दिनों बाद जैसे यहीं पहले-पहल उसने किसी को एक विशेष व्यक्ति, एक विशेष पुरुष के रूप में देखा। उस व्यक्ति को वह और दस लोगों से मिलाकर न देख सकी। ऐसे गोरा के विरुध्द खड़े होकर हरानबाबू मानो तुच्छ हो गए। उनके शरीर और चेहरे की आकृति, उनकी भाव-भंगिमा, यहाँ तक कि उनके कपड़े और चादर तक उन पर व्यंग्य करने लगी। इतने दिनों तक विनय के साथ बार-बार गोरा की चर्चा करते रहकर सुचरिता गोरा को एक विशेष मत का असाधारण व्यक्ति-भर समझने लगी थी; उसके द्वारा देश का कोई विशेष मंगल लक्ष्य सिध्द हो सकता है, उसने इतनी ही कल्पना की थी। आज एकटक उसके चेहरे की ओर देखते-देखते सुचरिता ने गोरा को जैसे सभी दलों, सभी मतों, सभी उद्देश्यों से अलग रखकर केवल गोरा के रूप में देखा। जैसे चाँद को समुद्र सारे प्रयोजनों और व्यवहारों से परे करके देखकर अकारण ही उद्वेलित हो उठता है, सुचरिता का मन भी आज वैसे ही सब-कुछ भूलकर, सारी बुध्दि और संस्कार छोड़कर, अपने सारे जीवन का अतिक्रमण करके मानो चारों ओर उच्छ्वसित होने लगा। मनुष्य क्या है, मनुष्य की आत्मा क्या है, यह मानो सुचरिता ने पहले-पहल देखा और इस अपूर्व अनुभूति से वह जैसे अपने अस्तित्व को बिल्कुल भूल गई।

हरानबाबू ने सुचरिता का यह भाव लक्ष्य किया। इससे बहस में उनकी युक्तियों का दम कुछ बढ़ा नहीं। अंत में अत्यंत अधीर होकर एकाएक आसन छोड़कर वह उठ खड़े हुए और बिल्कुल आत्मीय की तरह सुचरिता को पुकारते हुए बोले, "सुचरिता, ज़रा इस कमरे में आओ, तुम्हें एक बात कहनी है।"

एकबारगी सुचरिता चौंक उठी, जैसे उसे किसी ने पीट दिया हो। हरानबाबू के साथ उसका जैसा संबंध है, उसमें उसे वह कभी इस तरह नहीं बुला सकते, ऐसा नहीं है; कोई दूसरा समय होता तो वह इसकी कुछ परवाह भी न करती, किंतु आज गोरा और विनय के सामने उसने अपने को अपमानित अनुभव किया। विशेषतया गोरा ने तो उसके चेहरे की ओर कुछ ऐसे ढंग से देखा कि वह हरानबाबू को क्षमा न कर सकी। वह पहले तो वैसे ही चुपचाप बैठी रही जैसे उसने हरानबाबू की बात सुनी ही न हो।

इस पर हरानबाबू ने अपने स्वर में कुछ खीझ लाते हुए फिर पुकारा, "सुनती हो सुचरिता- मुझे एक बात कहनी है, एक बार उस कमरे में आना तो।"

उनके चेहरे की ओर देखे बिना सुचरिता ने उत्तर दिया, "अभी रहने दीजिए- बाबा आ जाएँ, फिर हो जाएगी।"

खड़े होते हुए विनय ने कहा, "नहीं तो हम लोग चलें.... "

जल्दी से सुचरिता ने कहा, "नहीं विनयबाबू, बैठे रहिए! बाबा आपको बैठने को कह गए हैं- बस अभी आते ही होंगे।"

उसके स्वर से एक व्याकुल विनती का भाव प्रकट हो रहा था। मानो हिरनी को व्याघ्र के हाथों सौंपकर चले जाने का प्रस्ताव हो रहा हो।

"मैं और नहीं रुक सकता- अच्छा मैं चल दिया", कहते हुए हारन बाबू जल्दी से कमरे से निकल गए। गुस्से में वह बाहर तो आ गए, किंतु अगले ही क्षण उन्हें पछतावा होने लगा। लेकिन तब फिर से लौटने का कोई बहाना न ढूँढ सके।

हरानबाबू के चले जाने के बाद सुचरिता जब गहरी लज्जा से लाल चेहरा झुकाए हुए बैठी थी, क्या करे या क्या कहे यह नहीं सोच पा रही थी,तब गोरा को उसके चेहरे की ओर अच्छी तरह देखने का मौका मिल गया। शिक्षित लड़कियों में जिस घमंड और प्रगल्भता की कल्पना गोरा ने कर रखी थी, सुचरिता के चेहरे पर उसका आभास तक भी नहीं था। उसके चेहरे पर बुध्दि की उज्ज्वलता अवश्य प्रकाशित हो रही है, किंतु नम्रता और लज्जा से आज वह कैसी सुंदर और कोमल दिखाई दे रही है! चेहरा कितना सुकुमार है, भँवों के ऊपर माथा मानो शरद् के आकाश-जैसा स्वच्छ-निर्मल! ओठ चुप हैं, किंतु अनुच्चारित बात का माधुर्य दोनों ओठों के मध्य एक कोमल कली-सा अटका हुआ है। आधुनकि स्त्रियों की वेश-भूषा की ओर इससे पहले गोरा ने कभी ध्यान से नहीं देखा, और बिना देखे ही उसके प्रति एक धिक्कार-भाव पाले रहा है- आज सुचरिता की देह पर नए ढंग की साड़ी पहनने की कला उसे विशेष अच्छी लगी। सुचरिता का एक हाथ मेज पर था, उसकी आस्तीन के सिकुड़े हुए भाग से निकला हुआ वह हाथ गोरा को आज किसी कोमल हृदय के कल्याणमई राग-सा लगा। प्रकाशित शांत संध्या में सुचरिता को घेरे हुए सारा कमरा अपने प्रकाश, अपनी दीवारों के चित्र, अपनी सजावट और अपनी सुव्यवस्था के कारण जैसे एक विशेष अनिंद्य रूप लेकर दिखाई दिया। वह घर है, वह सेवा-कुशल नारी के यत्न, स्नेह और सौंदर्य से मंडित है, वह मात्र दीवारों और शहतीरों पर टिकी हुई छत से कहीं अधिक

कुछ है- यह सब आज मानो क्षण-भर में गोरा के सामने प्रत्यक्ष हो उठा। अपने चारों ओर के आकाश में गोरा ने जैसे एक सजीव सत्ता का अनुभव किया- उसके हृदय पर चारों ओर से एक अन्य हृदय की लहरें आकर आघात करने लगीं; न जाने कैसी एक निविड़ता-सी उसे घेरने लगी। ऐसी अद्भुत उपलब्धि उसे जीवन में पहले कभी नहीं हुई। देखते-देखते सुचरिता के माथे पर बिखरे केशों से लेकर उसके पैरों के पास साड़ी के किनारे तक क्रमश: सब अत्यंत सत्य और अत्यंत विशेष हो उठा। एक ही साथ समग्र रूप में सुचरिता, और स्वतंत्र रूप में सुचरिता का प्रत्येक अंग गोरा की दृष्टि को आकर्षित करने लगा।

कुछ देर किसी के कुछ न बोल सकने से सभी ओर सन्नाटा पसरा था। तभी विनय ने सुचरिता की ओर देखकर कहा, "उस दिन हम लोगों में बात हो रही थी कि...." और इस प्रकार बात का सिलसिला चलाया।

वह बोला, "आप से तो मैं पहले ही कह चुका हूँ, मेरा एक समय ऐसा था जब मेरे मन में यह विश्वास जमा हुआ था के अपने देश के लिए,समाज के लिए हम कोई उम्मीद नहीं कर सकते- चिरकाल तक हम अबोध ही रहेंगे और अंग्रेज़ हमारे अभिभावक बने रहेंगे- जो जैसा है वह वैसा ही बना रहेगा- अंग्रेज की प्रबल शक्ति और समाज की प्रबल जड़ता के विरुध्द कहीं कोई उपाय भी हम न कर सकेंगे। हमारे देश के अधिकतर लोगों के मन का ऐसा ही भाव है। ऐसी स्थिति में मनुष्य या तो अपने स्वार्थ में ही लिप्त रहता है, या फिर उदासीन हो जाता है। हमारे देश के मध्य-वर्ग के लोग इसीलिए नौकरी में तरक्की के अलावा दूसरी कोई बात सोच ही नहीं सकते, और धनी लोग सरकार से खिताब पाने को ही जीवन की सार्थकता मानते हैं। हमारी जीवन-यात्रा का पथ थोड़ी दूर जाकर ही रुध्द हो जाता है- किसी सुदूर उद्देश्य की कल्पना भी हमारे दिमाग़ में नहीं आती, और उसके लिए साधन जुटाने को भी हम बिल्कुल अनावश्यक मान लेते हैं मैंने भी कभी सोचा था, गोरा के पिता की सिफारिश से कोई नौकरी ठीक कर लूँगा। ऐसे ही समय मुझसे गोरा ने कहा था- नहीं, सरकारी नौकरी तुम किसी तरह नहीं कर सकोगे।"

संचरिता के चेहरे पर इस बात से हल्का-सा आश्चर्य का भाव देखकर गोरा ने कहा, "आप यह न समझिए कि गवर्नमेंट पर रुष्ट होकर मैंने ऐसी बात कही थी। जो लोग गर्वनमेंट का पक्ष लेते हैं वे गवर्नमेंट की शक्ति को अपनी शक्ति मानकर घमंड करते हैं और देश के आम लोगों से अलग एक वर्ग के हो जाते हैं- ज्यों-ज्यों दिन बीतते हैं हमारा यह भाव भी त्यों-त्यों बढ़ता जाता है। मैं जानता हूँ, मेरे परिचय के

एक पुराने डिप्टी थे- अब काम छोड़ चुके हैं- उनसे डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने पूछा था, 'बाबू, तुम्हारी कचहरी में इतन ज्यादा लोग कैसे बरी हो जाते हैं?' इस पर उन्होंने जवाब दिया था, 'साहब, उसकी एक वजह है। जिन्हें आप जेल भी भेजते हैं, वे आपके लिए कुत्ते-बिल्ली के समान हैं, और मैं जिन्हें जेल भेजता हूँ वे तो मेरे अपने भाई-बंधु हैं।' तब तक भी ऐसे डिप्टी थे जो इतनी बड़ी बात कह सकें, और ऐसे अंग्रेज़ मजिस्ट्रेटों की भी कमी नहीं थी जो ऐसा सुन सकें। लेकिन जैसे-जैसे दिन बीतते जाते हैं, नौकरी के फंदे अंग के गहने होते जा रहे हैं, और आजकल के डिप्टियों के लिए भी देश के लोग धीरे-धीरे कुत्ते-बिल्ली के समान हुए जा रहे हैं। और इस प्रकार तरक्की पाते रहने से उनकी जो केवल अधोगति हो रही है, इस बात की अनुभूति भी उनको नहीं हो रही है। दूसरे के कंधे का सहारा लेकर अपनो को नीचा समझना, और नीचा समझकर उनके साथ अन्याय करने को उध्दत होना, इससे कोई मंगल नहीं हो सकता।"

कहकर मुट्ठी से मेज़ पर गोरा ने आघात किया; तेल का लैंप काँप उठा।

विनय ने कहा, "गोरा, यह मेज़ गवर्नमेंट की नहीं है, और यह लैंप भी परेशबाबू का है।"

गोरा ऊँचे स्वर से हँसा। उसकी प्रबल हँसी की गूँज से सारा कमरा भर गया। मज़ाक करने पर ऐसे बच्चों की तरह गोरा खुलकर हँस सकता है,इससे सुचरिता को अचंभा हुआ और मन-ही-मन आनंद भी हुआ। जो लोग बड़ी-बड़ी बातों की चिंता करते हैं वह ऐसे जी खोलकर हँस भी सकते हैं,यह वह नहीं जानती थी।

उस दिन गोरा ने बहुत बातें कीं। यद्यपि सुचरिता चुप ही रही फिर भी उसके चेहरे का भाव कुछ ऐसी सहमति का था कि गोरा का हृदय उत्साहित हो उठा। अंत में जैसे विशेष रूप से सुचरिता को संबोधित करके ही उसने कहा, "देखिए, एक बात याद रखिए। अगर हमें यही ग़लत धारणा हो कि अंग्रेज़ क्योंकि इतने प्रबल हो गए हैं, इसलिए हम भी ठीक अंग्रेज़ हुए बिना किसी प्रकार प्रबल नहीं हो सकते, तो फिर यह असंभव कभी संभव नहीं होगा और हम लोग नकल करते-करते ही घर से बाहर खदेड़ दिए जाएँगे। आप निश्चिय जानिए, भारत की एक विशेष प्रकृति है, विशेष शक्ति और विशेष सच्चाई है, उसी के संपूर्ण विकास द्वारा ही भारत सार्थक होगा, भारत की रक्षा होगी। अंग्रेज़ का इतिहास पढ़कर भी यदि हमने यह नहीं सीखा तो सब कुछ ग़लत सीखा है। आपसे मेरी यही प्रार्थना है आप भारतवर्ष के भीतर आइए, उसकी सब अच्छाई-बुराई के बीचों-बीच उतरकर खड़ी होइए- विकृति हो तो भीतर से सुधार

कर दीजिए; लेकिन उसे देखिए, समझिए, उसको जानिए, उसकी ओर मुड़िए, उसके साथ एक होइए! उसके विरुध्द खड़े होकर, बाहर रहकर बचपन से ख्रिस्तानी संस्कारों में दीक्षित होकर आप उसे समझ ही नहीं सकेंगी, उसे केवल क्षति ही पहुँचाती रहेंगी,उसके मंगल के काम नहीं आ सकेंगी।"

गोरा ने कहा तो 'मेरी प्रार्थना' किंतु यह प्रार्थना नहीं थी; मानो आदेश था। बात में कुछ ऐसा प्रचंड बल था कि दूसरे की सम्मति की उसे उपेक्षा न थी। सिर झुकाकर सुचरिता ने सब सुन लिया। विशेष रूप से गोरा ने उसी को संबोधित करके इतने प्रबल आग्रह के साथ ये बातें कहीं, इससे सुचरिता के मन में एक उथल-पुथल मच गई। यह बेचैनी किस बात की है, यह सोचने का समय तब नहीं था। भारतवर्ष नाम की एक महान प्राचीन सत्ता है, यह बात सुचरिता ने क्षण-भर के लिए भी कभी नहीं सोची थी। यह सत्ता छिपी रहकर भी अधिकार पूर्वक सुदूर अतीत से लेकर सुदूर भविष्य तक मानव-जाति के विराट भाग्य-जाल में एक विशेष रंग का सूत्र एक विशेष ढंग से बुनती रही है, यह सूत्र कितना सूक्ष्म और अनोखा है और कितनी दूर तक उसका कितना गहरा प्रभाव है, यह आज गोरा के प्रबल स्वर के रूप में सुचरिता के सामने मानो सहसा प्रकट हो गया। प्रत्येक भारतवासी का जीवन इतनी बड़ी एक सत्ता से घिरा हुआ और अधिकृत है, उसे चेतन भाव से अनुभव न करने से हम लोग कितने छोटे हो जाते हैं और अपने चारों ओर की स्थित से कैसे बेखबर होकर काम करते हैं, यह सुचरिता के सम्मुख क्षण-भर में स्पष्ट हो गया। इसी आकस्मिक स्फूर्ति के आवेग से सुचरिता अपना सब संकोच त्यागकर सहज ही विनय से कह उठी, "देश की बात कभी मैंने इस ढंग से उसे इतना बड़ा और सत्य मानकर नहीं सोची। लेकिन एक बात मैं पूछना चाहती हूँ- धर्म के साथ देश का क्या संबंध है? क्या धर्म देश से परे नहीं है?"

धीर स्वर में पूछा गया सुचरिता का यह प्रश्न गोरा को बड़ा सरस लगा। सुचरिता की बड़ी-बड़ी ऑखों में यह प्रश्न और भी रसपूर्ण दिखाई दिया। गोरा ने कहा, "देश से जो परे हैं, देश से जो कहीं बड़ा है, वह देश के भीतर से ही प्रकट होता है। ऐसे ही विचित्र भाव से ईश्वर अपने अनंत स्वरूप को व्यक्त करते हैं। जो कहते हैं कि सत्य एक है, इसलिए केवल एक ही धर्म सत्य हो सकता है, या धर्म का एक ही रूप सत्य हो सकता है, वे इस सत्य को तो मानते हैं कि सत्य एक है, लेकिन इस सत्य को नहीं मानना चाहते हैं कि सत्य अंतहीन होता है। वह जो अंतहीन एक है, वह अंतहीन अनेक में अपने को एकाशित करता रहता है- उसी की लीला तो सारे जगत में हम देखते हैं। इसीलिए धर्म-मत भी विभिन्न रूप लेकर कई दिशाओं से उसी धर्म-राज

की उपलब्धि कराते हैं। मैं निश्चयपूर्वक आप से कहता हूँ, भारतवर्ष की खुली खिड़की से आप सूर्य को देख सकेंगी- इसके लिए सागर-पार जाकर ख्रिस्तान गिरजाघर की खिड़की में बैठने की कोई आवश्यकता न होगी।"

सुचरिता ने कहा, "आप यह कहना चाहते हैं कि भारतवर्ष का धर्म-तंत्र हमें एक विशेष मार्ग से ईश्वर की ओर ले जाता है। वह विशेष क्या है?"

गोरा ने कहा, "वह यह कि ब्रह्म जो निर्विशेष है, वह विशेष में ही व्यक्त होता है, किंतु उसका विशेष अंतहीन है। जल भी उसका विशेष है,स्थल भी उसका विशेष है; अग्नि, वायु, प्राण उसके विशेष हैं; बुध्दि, प्रेम सभी उसके विशेष हैं। गिनकर उसका कोई अंत नहीं पाया जा सकता,इसीलिए विज्ञान का सिर चकरा जाता है। जो निराकार है उसके आकार का अंत नहीं है- ह्रस्व-दीर्घ, स्थूल-सूक्ष्म का अनंत प्रवाह ही उसका है। जो अनंत विशेष है वही निर्विशेष है, जो अनंत रूप है वही अरूप है। दूसरे देशों में ईश्वर को कम या अधिक मात्रा में किसी एक विशेष में बाँधने की कोशिश होती है- भारतवर्ष में भी ईश्वर को विशेष में देखने की कोशिश होती है अवश्य; किंतु भारतवर्ष उसी विशेष को एकमात्र और चरम नहीं कहता। ईश्वर उस विशेष का भी अनंत प्रकार से अतिक्रमण करता रहता है, इस तथ्य को भारतवर्ष में कोई भक्त कभी अस्वीकार नहीं करते।"

सुचरिता ने कहा, "ज्ञानी नहीं करते, लेकिन अज्ञानी?"

गोरा बोला, "मैंने तो पहले ही कहा, सब देशों में अज्ञानी सब सत्यों को विकृत करते हैं।"

सुचरिता ने कहा, "लेकिन हमारे देश में यह विकृति क्या अधिक दूर तक नहीं पहुँच गई है?"

"हो सकता है, किंतु उसका कारण यही है कि धर्म के स्थूल सूक्ष्म, अंत: और बाह्य, शरीर और आत्मा, भारतवर्ष इन दोनों अंगो को पूर्णरूपेण स्वीकार करना चाहता है; इसलिए जो लोग सूक्ष्म को ग्रहण नहीं कर पाते वे स्थूल का ही वरण करते हैं और अज्ञानवश उस स्थूल में अनेक विकार पैदा करते रहते हैं। लेकिन जो रूप में भी और अरूप में भी सत्य है, स्थूल में भी और सूक्ष्म में भी सत्य है ध्यान में भी और प्रत्यक्ष में भी सत्य है, उन्हें शरीर-मन-कर्म सभी से प्राप्त करने का जो आश्चर्यजनक और विशाल प्रयत्न भारतवर्ष कर रहा है, मूर्खों की तरह उसकी अवज्ञा करके अठारहवीं शताब्दी के यूरोप के नास्तिकता और आस्तिकता-मिश्रित एक संकीर्ण, नीरस,

अंगहीन धर्म को हम एकमात्र धर्म मानकर ग्रहण कर लें, यह कैसे संभव हो सकता है? मैं जो कह रहा हूँ वह आप शायद अपने बचपन में पड़े हुए संस्कारों के कारण अच्छी तरह न समझ सकेंगी, सोचेंगी कि इस आदमी को अंग्रेज़ी पढ़कर भी शिक्षा का कुछ फल नहीं मिला। लेकिन आपमें कभी भारतवर्ष की सत्य प्रकृति और सत्य साधना के प्रति श्रध्दा उत्पन्न हो सकी- हज़ारों बाधाओं और विकृतियों के बीच भी भारतवर्ष जैसे अपने को प्रकाशित कर रहा है, उस प्रकाश की गहराई में आप फिर पाकर आप मुक्ति-लाभ कर सकेंगी।"

बहुत देर तक सुचरिता को चुप बैठे देखकर गोरा ने कहा, "मुझे आप एक कट्टर व्यक्ति न समझ लीजिएगा। कट्टर लोग, विशेषकर जो लोग नए ढंग से कट्टर हो गए हैं वे जिस ढंग से हिंदू-धर्म के बारे में बात करते हैं मेरी बात को उस ढंग से न लीजिएगा। भारतवर्ष की अनेक प्रकार की छवि और विचित्र चेष्टाओं के बीच मैं एक गहरा और बृहत् ऐक्य देख पाया हूँ, उसी ऐक्य के आनंद से मैं पागल हूँ। उसी ऐक्य के आंनद से, भारतवर्ष में जो सबसे मूढ़ हैं उनके साथ हिल-मिलकर धूल में भी बैठने में मुझे थोड़ा भी संकोच नहीं होता। भारतवर्ष के इस संदेश को कोई समझते हैं, कोई नहीं समझते-तो न सही; मैं अपने देश के सब लोगों के साथ एक हूँ; वे सभी मेरे अपने हैं। उन सबके बीच चिंरतन भारतवर्ष का गू आविर्भाव बराबर अपना कार्य कर रहा है, इस विषय में मेरे मन में ज़रा भी शंका नहीं है।"

गोरा की ये ज़ोरदार बातें जैसे कमरे की दीवारों से, मेज़ से, सभी सामान से प्रतिध्वनित होकर आने लगीं।

ये सब बातें सुचरिता के पूर्णत: स्पष्ट समझने की नहीं थी। किंतु अनुभूति का पहला सूक्ष्म संचार भी बड़ा प्रबल होता है। जीवन किसी चारदीवारी या गुट की सीमा में बँधा नहीं है, यह उपलब्धि सुचरिता के मन में कसकने लगी।

सीढ़ी के पास से सहसा लड़कियों की ऊँची हँसी के साथ पैरों की तेज चाप सुनाई दी। वरदासुंदरी तथा लड़कियों को लेकर परेशबाबू लौट आए थे। सुधीर सीढ़ियाँ चढ़ते समय कुछ दंगा कर रहा था, यही उस हँसी का कारण था।

लावण्य, ललिता और सतीश कमरे में आते ही गोरा को देख सँभलकर खड़े हो गए। लावण्य कमरे से बाहर चली गई, सतीश विनय की कुर्सी के पास खड़े होकर उसके कान में कुछ कहने लगा। ललिता एक कुर्सी सुचरिता के पीछे खींचकर उसकी ओट में अदृश्य-सी होकर बैठ गई।

परेशबाबू ने आकर कहा, "मुझे लौटने में बड़ी देर हो गई। जान पड़ता है, पानू बाबू चले गए?"

सुचरिता ने कोई उत्तर नहीं दिया। विनय ने ही कहा, "हाँ, वह और नहीं रुक सके।"

उठकर गोरा ने कहा, "अब हम लोग भी चलें।" कहकर उसने झुककर परेशबाबू को नमस्कार किया।

परेशबाबू ने कहा, "आज तुम लोगों से बातचीत का मौका ही नहीं मिला। बाबा, जब भी तुम्हें फुरसत हो आते रहना!"

गोरा और विनय कमरे से निकल रहे थे कि वरदसुंदरी आ गईं। दोनों ने उन्हें नमस्कार किया। उन्होंने कहा, "आप लोग अब जा रहे हैं क्या?"

गोरा ने कहा, "हाँ।"

विनय से वरदासुंदरी ने कहा, "लेकिन विनय बाबू, अभी आप नहीं जा सकते- आपको भोजन करके ही जाना होगा। आज कुछ काम की बात करनी है।"

सतीश ने उछलकर विनय का हाथ पकड़ लिया और कहा "हाँ माँ, विनय बाबू को जाने मत देना; आज वह मेरे पास रहेंगे।"

विनय कुछ सकुचा रहा है और कोई उत्तर नहीं दे पा रहा है, यह देखकर वरदासुंदरी ने गोरा से कहा, "विनयबाबू को क्या आप साथ ही ले जाना चाहते है-उनकी क्या अभी ज़रूरत है?"

गोरा ने कहा, "नहीं, बिल्कुल नहीं। विनय, तुम रह जाओ न- मैं जाता हूँ।" कहता हुआ गोरा जल्दी से उतर गया।

जैसे ही विनय के रुक जाने के बारे में वरदासुंदरी ने गोरा से अनुमति माँगी, वैसे ही ललिता की ओर देखे बिना विनय न रह सका। ललिता ने दबे ओठों से मुस्कराकर मुँह फेर लिया।

ललिता के इस छोटे-से विहँसते व्यंग्य के साथ विनय झगड़ा नहीं कर सकता, पर उसे यह काँटे सा चुभता है। कमरे में आकर विनय के बैठते ही ललिता ने कहा, "विनय बाबू, आज तो आपका भाग जाना ही ठीक रहता।"

विनय ने कहा, "क्यों?"

"माँ ने आपको मुश्किल में डालने की सोची है। मजिस्ट्रेट के मेले में जो अभियान होगा उसके लिए एक आदमी कम पड़ रहा है- माँ ने आप ही का चुनाव किया है।"

घबराकर विनय ने कहा, "मारे गए! मुझसे तो यह काम नहीं होगा!"

हँसकर ललिता ने कहा "यह तो मैंने पहले ही माँ से कह दिया है। वैसे भी इस अभिनय में अपके दोस्त कभी आपको भाग नहीं लेने देंगे।"

चोट खाकर विनय ने कहा, "दोस्त की बात छोड़िए। मैंने सात जन्म में कभी अभिनय नहीं किया-मुझे क्यों चुना?"

ललिता ने कहा, "और हम लोग तो मानो जन्म जन्मांतर से अभिनय करती आ रही हैं न?"

इसी समय कमरे में वरदासुंदरी बैठ गईं। ललिता ने कहा, "माँ, अभिनय के लिए तुम विनय बाबू से यों ही कह रही हो? पहले उनके दोस्त को राज़ी कर सको तभी.... "

कातर होकर विनय ने कहा, "दोस्त के राज़ी होने की कुछ बात नहीं है। अभिनय यों ही तो नहीं हो जाता-मुझे तो आता ही नहीं।"

वरदासुंदरी ने कहा, "उनकी चिंता न करें- हम आप को सिखा पढ़ाकर तैयार कर देंगी। छोटी-छोटी लड़कियाँ कर सकेंगी और आप नहीं कर सकेंगे?"

विनय के बचाव का कोई रास्ता नहीं रहा।

21.अपनी स्वाभाविक तेज़ चाल छोड़कर गोरा अन्यमनस्क-सा धीरे-धीरे घर की ओर जा रहा था। घर का सीधा रास्ता छोड़ उसने बहुत घूमकर गंगा के किनारे का रास्ता पकड़ा। उस समय कलकत्ता की गंगा और उसका किनारा वणिक-सभ्यता की लाभ.... लोलुप कुरूपता से जल-थल पर आक्रांत नहीं हुआ था; किनारे पर रेल की पटरी और पानी पर पुल की बेड़ियाँ नहीं पड़ी थीं। उन दिनों जाड़ों की संध्या में शहर के नि:श्वासों की कालिख आकाश पर इतनी सघन नहीं छाती थी। सुदूर हिमालय की निर्जन चोटियों से नदी तब कलकत्ता की धूल-लिपटी व्यस्तता के बीच शांति की वार्ता लिए हुए ही उतरती थी।

गोरा के मन को आकृष्ट करने का प्रकृति को कभी अवसर नहीं मिला था। उसके अपने कम-काज के वेग से ही उसका मन बराबर तरंगित रहता था, जो जल-थल आकाश मुक्त रूप से उसके काम-काज का क्षेत्र बने हुए थे उन्हें जैसे उसने कभी लक्ष्य ही नहीं किया था।

किंतु आज नदी के ऊपर का वही आकाश नक्षत्रों से खचित अपने अंधकार के द्वारा बार-बार गोरा के हृदय को मौन भाव से छूने लगा। नदी शांत थी, कलकत्ता के घाटों पर कुछ नौकाओं में रोशनी हो रही थी और कुछ पर प्रकाशहीन सन्नाटा था। दूसरी तरफ के पेड़ों के झुरमुटों पर घनी कालिमा छाई थी। उसके ऊपर अंधकार के अंतर्यामी-सा बृहस्पति अपनी तिमिर-भेदी अपलक दृष्टि लिए चमक रहा था।

आज इस विशाल नि:स्तब्ध प्रकृति ने जैसे गोरा के तन-मन को पुलकित कर दिया। आकाश का विराट अंधकार गोरा के हृदय की गति पर मानो ताल देने लगा। इतने दिनों से प्रकृति धीरज धर स्थिर बैठी थी-आज गोरा के अंतस् का कोई द्वार खुला पाकर उसने इस असावधानी में क्षण-भर में दुर्ग को विजित कर लिया। अब तक अपनी विद्या-बुध्दि, चिंता और कर्म के बीच गोरा बिल्कुल स्वतंत्र था- आज सहसा क्या हुआ, न जाने कहाँ आज उसने प्रकृति को स्वीकार किया और उसके स्वीकार करते ही इस गहरे काले जल, निविड़ काले तट, इस उदार काले आकाश ने उसे वरण कर लिया। आज न जाने कैसे गोरा प्रकृति की पकड़ाई में आ गया।

रास्ते के किनारे पर व्यापारिक दफ्तर के बगीचे की किसी विलायती लता से किसी अनजाने फूल की मोहक कोमल गंध गोरा के व्याकुल हृदय को सहलाने लगी। नदी ने उसे भीड़-भरे कर्म-क्षेत्र से किसी अनिर्दिष्ट सुदूर की ओर इंगित कर दिया जहाँ निर्जन जल के किनारे पेड़ों की गुम्फित डालों में न जाने कौन-से फूल खिलते हैं, कौन-सी छायाएँ फैलती हैं। वहाँ निर्मल नीलव्योम के नीचे दिन मानो किसी की आँखों की उन्मीलित चमक है और रातें मानो किसी की झुकी हुई पलकों की लज्जा-जड़ित छाया। चारों तरफ से माधुर्य की लहरें आकर गोरा को जिस एक अतल, अनादि शक्ति के आकर्षण में समेट लिया, उसका कोई ज्ञान गोरा को इससे पहले नहीं था। वह एक साथ ही वेदना और आनंद से उसके समूचे मन को एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर ले जाने लगी। आज इस हेमंती रात में नदी के किनारे नगर के कोलाहल से दूर और नक्षत्रों के अस्फुट प्रकाश में गोरा किसी विश्वव्यापिनी अवगुंठित मायाविनी के सम्मुख आत्मविस्मृत-सा खड़ा हुआ था। इतने दिन इस महारात्रि को उसने सिर झुकाकर नहीं किया, इसीलिए अचानक आज उसके शासन

के जादू ने गोरा को अपनी सह-वर्ण डोर से जल, थल, आकाश के साथ चारों ओर से बाँध लिया। अपने ऊपर गोरा स्वयं हैरान होता हुआ नदी के सूने घाट की एक सीढ़ी पर बैठ गया। बार-बार वह अपने-आपसे पूछने लगा कि उसके जीवन में यह किस नई चीज़ का आविर्भाव हो रहा है और इसका प्रयोजन क्या है! जिस प्रण के द्वारा उसने अपने जीवन को एक सिरे से दूसरे सिरे तक व्यवस्थित कर रखा था उसके बीच इसका स्थान कहाँ है? यह क्या उसके विरुध्द है- इसे क्या संघर्ष करके परास्त करना होगा? यह सोचकर जैसे ही गोरा ने मुट्ठियाँ कसकर बाँधी, वैसे ही बुध्दि से उज्ज्वल, नम्रता से कोमल को स्निग्ध आँखों की जिज्ञासु दृष्टि उसके मन के सम्मुख आ गई- किसी अनिन्द्य सुंदर हाथ की उँगलियों ने स्पर्श-सौभाग्य का अनचखा अमृत उसके ध्यान के सामने ला रखा- गोरा के सारे शरीर में पुलक की बिजली-सी कौंध गई। अंधकार के सूनेपन में यह सरस अुभूति उसके सभी संदेहों को, उसकी दुविधा को बिल्कुल निरस्त कर गई। अपने पूरे तन-मन से वह इस नई अनुभूति का उपभोग करने लगा, इसे छोड़कर उठ जाने की उसकी इच्छा नहीं हुई।

जब बहुत रात गए वह घर लौटा तब आनंदमई ने पूछा, "इतनी रात कर दी, बेटा? खाना तो ठंडा हो गया है।"

गोरा ने कहा, "क्या जाने माँ, आज क्या सूझा कि बहुत देर गंगा के घाट पर बैठा रहा।"

आनंदमई ने पूछा, "क्या विनय साथ था?"

गोरा ने कहा, "नहीं, मैं अकेला ही था।"

मन-ही-मन आंनदमई को कुछ अचरज हुआ। बिना प्रयोजन गोरा इतनी रात तक गंगा के किनारे बैठकर सोचे, ऐसी घटना पहले तो कभी नहीं हुई। चुपचाप बैठे रहना तो गोरा का स्वभाव ही नहीं है। जब अनमना-सा गोरा खाना खा रहा था तब आनंदमई ने लक्ष्य किया कि उसके चेहरे पर एक नए ढंग की उलझन बिखरी हुई है।

आनंदमई ने थोड़ी देर के बाद धीरे-से पूछा, "शायद आज विनय के घर गए थे?"

गोरा ने कहा, नहीं, हम दोनों ही आज परेशबाबू के यहाँ गए थे।"

आनंदमई यह सुनकर थोड़ी देर चुप बैठी सोचती रही। फिर उन्होंने पूछा, "उन सबके साथ तुम्हारा परिचय हो गया है?"

गोरा ने कहा, "हाँ, हो गया।"

आनंदमई, "उनकी लड़कियाँ सामने आती हैं?"

"हाँ, उन्हें कोई झिझक नहीं है।"

और किसी समय गोरा के ऐसे उत्तर के साथ थोड़ी उत्तेजना भी प्रकट होती, किंतु आज उसके कोई लक्षण न देखकर आनंदमई फिर चुपचाप सोचने लगीं।

अगले दिन गोरा सबेरे उठकर अन्य दिनों की भाँति फौरन मुँह-हाथ धोकर दैनिक कामों के लिए तैयार होने नहीं गया। अन्यमनस्क-सा सोने के कमरे के पूरब की ओर का दरवाज़ा खोलकर कुछ देर खड़ा रहा। पूरब की ओर उनके घर की गली एक बड़ी सड़क में जा मिलती है, उस सड़क के पूरब की ओर एक स्कूल है, उस स्कूल से लगे मैदान में एक पुराने जामुन के पेड़ के ऊपर हल्का कुहासा तैर रहा था और उसकी आड़ में सूर्योदय की अरुण रेखा धुंधली-सी दीख रही थी। बहुत देर तक गोरा के चुपचाप उधर देखते-देखते वह हल्का कुहासा लुप्त हो गया और खिली धूप पेड़ की डालों के भीतर से अनगिनत चमचमाती संगीनों की तरह पार हो गई और देखते-देखते कलकत्ता की सड़कें लोगों से और कोलाहल से भर उठीं।

इसी समय गली के मोड़ पर अविनाश के साथ कुछ और विद्यार्थियों को अपने घर की ओर आते देखकर गोरा ने अपने इस स्वप्न के जाल को ज़ोर से झटककर तोड़ दिया। अपने मन को स्थिर कर उनसे कहा, "नहीं, यह सब कुछ नहीं है, ऐसे नहीं चलेगा।" ऐसा कहते हुए वह शीघ्रता से सोने के कमरे से निकल गया। गोरा के गुट के लोग उसके घर आएँ और उनके आने से पहले गोरा तैयार हो गया हो, ऐसी घटना इससे पहले कभी नहीं घटी। इस ज़रा-सी भूल ने ही गोरा को बहुत गहरे धिक्कारा। मन-ही-मन उसने निर्णय किया कि फिर वह परेशबाबू के घर नहीं जाएगा और ऐसी कोशिश करेगा कि विनय से भी कुछ दिन तक मिलना न हो और इन बातों की चर्चा बंद रहे।

उस दिन नीचे जाकर सलाह करके सबकी सम्मति से यही तय हुआ कि गुट के दो-तीन आदमियों को साथ लेकर गोरा पैदल ग्रांड ट्रंक रोड की यात्रा करने निकलेगा, साथ में रुपया-पैसा कुछ नहीं लेगा, रास्ते में गृहस्थों का आतिथ्य स्वीकार किया जाएगा।

इस अद्भुत संकल्प को साधकर गोरा कुछ अतिरिक्त ही उत्साहित हो उठा। इस तरह खुली सड़क पर सारे बंधन काटकर चल निकलने का एक अनोखा आनंद उस पर छा गया। उसे लगा कि उसका हृदय भीतर-ही-भीतर जिस जाल में फँस गया था, उससे छुटकारे की इस कल्पना से ही वह टूट गया है। यह सब भावावेश सिर्फ माया है और कर्म ही सत्य है, यह बात बड़े ज़ोर से अपने मन में दुहराकर और प्रतिध्वनित करके, यात्रा की तैयारी करने के लिए गोरा घर की निचली मंज़िल के बैठक वाले कमरे से यों लगभग दौड़ता हुआ बाहर निकला जैसे लड़के स्कूल की छुट्टी होने पर निकलते हैं।

उस समय कृष्णदयाल गंगा-स्नान करके, लोटे में गंगाजल लिए, नामावली ओढ़े, मन-ही-मन मंत्रजाप करते घर लौट रहे थे। एकाएक गोरा उनसे टकरा गया। लज्जित होकर जल्दी से उसने उन्हें पैर छूकर प्रणाम किया, वह "रहने दो, रहने दो" कहकर सकपकाए हुए-से अंदर चले गए। पूजा पर बैठने से पहले गोरा का संस्पर्श हो जाने से उनके गंगा-स्नान का फल तो नष्ट हो गया। कृष्णदयाल गोरा के संस्पर्श से ही विशेषत: बचने की कोशिश करते हैं, यह गोरा ठीक-ठीक नहीं समझता था। वह यही सोचता था कि छुआछूत मानने के कारण सभी के हर तरह के संसर्ग से बचने के लिए ही वह इतने सतर्क रहते हैं। आनंदमई को तो म्लेक्ष कहकर वह दूर रखते ही थे, महिम काम-काजी आदमी था सो उससे तो भेंट होने का मौका नहीं आता था। सारे परिवार में मात्र महिम की लड़की शशिमुखी को अपनाकर उसे वह संस्कृत के स्रोत रटाते थे और पूजा-अर्चना की विधि सिखलाते थे।

गोरा द्वारा पाँव छुए जाने से कृष्णदयाल के व्यस्त होकर जल्दी से हट जाने पर गोरा का ध्यान उनके संकोच के कारण की ओ गया और वह मन-ही-मन हँसा। इसी तरह पिता के साथ गोरा का संबंध धीरे-धीरे प्राय: खत्म-सा हो गया था, और माँ के अनाचार की वह चाहे जितनी बुराई करे,इसी आचारद्रोहिणी माँ की ही वह अपने मन की सारी श्रध्दा के साथ पूजा करता था।

भोजन के बाद कुछ कपड़ों की पोटली बाँधकर और उसे विदेशी पर्यटकों की तरह कंधे पर डालकर वह माँ के निकट जा उपस्थित हुआ। बोला, "माँ, मैं कुछ दिन के लिए बाहर जाऊँगा।"

आनंदमई ने पूछा, "कहाँ जाओगे, बेटा?"

गोरा ने कहा, "यह तो मैं ठीक नहीं बता सकता।"

आनंदमई ने पूछा, "कोई काम है?"

गोरा ने कहा, 'जिसे काम कहा जाता है वैसा तो कुछ नहीं-बस बाहर जाना ही काम है।"

गोरा ने आनंदमई को चुप होते देखकर कहा, "माँ, मैं हाथ जोड़ता हूँ, मुझे मना मत करना। तुम तो मुझे जानती हो, मेरे सन्यासी हो जाने का तो कोई भय है नहीं। फिर सोचो तुम्हें छोड़कर अधिक दिन क्या मैं कहीं रह सकता हूँ।"

माँ के प्रति अपने प्यार की बात कभी गोरा ने अपने मुँह से इस तरह नहीं कही थी, इसलिए यह बात कहकर वह लज्जित हो गया।

आनंदमई ने पुलकित होकर जल्दी से उसकी लज्जा को ओट देते हुए कहा, "तो विनय भी साथ जाएगा?"

हड़बड़ाकर गोरा ने कहा, "नहीं माँ, विनय नहीं जाएगा! यह लो, अब माँ ने यह सोचना शुरू कर दिया कि विनय न गया तो सफर में उसके गोरा की देख-भाल कौन करेगा! विनय को मेरा रखवाला समझती हो यह तुम्हारी बुरी आदत है माँ- इस बार मेरे भले-चंगे लौट आने से ही तुम्हारा यह भ्रम दूर होगा।"

आनंदमई ने पूछा, "बीच-बीच में खबर तो मिलती रहेगी न?"

गोरा ने कहा, "तुम यही समझ लो कि खबर नहीं मिलेगी- फिर भी अगर मिल जाय तो तुम्हें अच्छा ही लगेगा। घबराने की कोई बात नहीं है,तुम्हारे गोरा को कोई ले नहीं जाएगा। जितना तुम मुझे मूल्यवान समझती हो माँ, उतना और कोई नहीं समझता न! या इस गठरी पर ही किसी को लोभ हो तो यह उसे दान देकर चला आऊँगा, इसको बचाने के लिए जान नहीं गँवाऊँगा- यह तो निश्चय समझो।"

आनंदमई की चरण-धूल लेकर गोरा ने प्रणाम किया। उन्होंने उसके सिर पर हाथ फेरकर हाथ चूम लिया, किसी तरह का निषेध नहीं किया। अपने कष्ट या किसी अनिष्ट की आशंका की बात कहकर आनंदमई कभी किसी को नहीं रोकती थी। उन्होंने अपने जीवन में अनेक बाधाएँ और विपत्तियाँ सही थीं, बाहर की दुनिया उनके लिए अजानी न थी। भय का उनके मन में लेश भी नहीं था। यह शंका उन्हें नहीं हुई कि गोरा पर कोई मुसीबत आ सकती है, किंतु पिछले दिन यही सोचकर वह चिंतित

थीं कि न जाने गोरा के मन में क्या उथल-पुथल हो रही है। सहसा आज यह सुनकर कि गोरा अकारण ही भ्रमण करने जा रहा है, उनकी चिंता और भी गहरी हो गई।

गोरा जैसे गठरी कंधे पर रखकर बाहर निकला वैसे ही विनय हाथों में गहरे लाल रंग के गुलाबों का एक जोड़ा बड़े यत्न से सँभाले हुए सामने आ खड़ा हुआ। गोरा ने कहा, "विनय, तुम्हारा दर्शन असगुन है कि सगुन, इसकी जाँच अब हो जाएगी।"

विनय ने पूछा, "कहीं जा रहे हो क्या?"

गोरा ने कहा, "हाँ।"

विनय ने पूछा, "कहाँ?"

गोरा ने कहा, "अनुगूँज उत्तर देती है, कहाँ।"

विनय, "अनुगूँज से अच्छा और उत्तर नहीं है क्या?"

गोरा, "नहीं। तुम माँ के पास जाओ, उनसे सब पता लग जाएगा। मैं चलता हूँ।"

गोरा तेज़ी से चला गया, विनय ने भीतर आनंदमई को प्रणाम करके गुलाब के फूल उनके चरणों पर रख दिए।

फूल उठाते हुए आनंदमई ने पूछा, "ये कहाँ मिले, विनय?"

विनय ने प्रश्न का सीधा उत्तर न देकर कहा, "अच्छी चीज़ मिलने पर पहले उसे माँ के चरणों में चढ़ाने का मन होता है।"

फिर आनंदमई के तख्तपोश पर बैठते हुए विनय ने कहा, "लेकिन माँ, आज तुम कुछ अनमनी जान पड़ती हो।"

आनंदमई ने कहा, "भला क्यों?"

"क्योंकि आज मुझे मेरा पान देना तो भूल ही गई।"

लज्जित होकर आनंदमई ने विनय को पान ला दिया।

फिर दोपहर-भर दोनों में बातचीत होती रही। गोरा के निरुद्देश्य भ्रमण के असली कारण के बारे में विनय कुछ ठीक-ठाक न बतला सका।

बातों-बातों में आनंदमई ने पूछा, "कल शायद गोरा को साथ लेकर तुम परेशबाबू के घर गए थे?"

पिछले दिन की सारी बात विनय ने ब्यौरेवार सुना दी, आनंदमई पूरा मन लगाकर सुनती रहीं।

जाते समय विनय ने कहा, "माँ, पूजा तो संपन्न हो गई, अब तुम्हरे चरणों का प्रसाद ये दो फूल सिर पर धारण करके ले जाऊँ?"

हँसकर आनंदमई ने दोनों गुलाब विनय के हाथ में दे दिए और मन-ही-मन सोचा, केवल सौंदर्य के लिए इन गुलाबों को इतना सम्मान मिल रहा हो सो बात नहीं है- अवश्य ही इनमें वनस्पति तत्व से परे किसी गूढ़ तत्व की भी बात है। तीसरे पहर विनय के चले जाने पर वह बहुत-कुछ सोचती रहीं और भगवान को पुकारकर बार-बार प्रार्थना करती रहीं कि गोरा को कोई कष्ट न हो और विनय से उसके मन-मुटाव की कोई घटना न घटित हो।

# गोरा - Gora in Hindi


1. गोरा अध्याय
2. गोरा अध्याय
3. गोरा अध्याय
4. गोरा अध्याय
5. गोरा अध्याय
6. गोरा अध्याय
7. गोरा अध्याय
8. गोरा अध्याय
9. गोरा अध्याय
10. गोरा अध्याय
11. गोरा अध्याय
12. गोरा अध्याय
13. गोरा अध्याय
14. गोरा अध्याय
15. गोरा अध्याय
16. गोरा अध्याय
17. गोरा अध्याय
18. गोरा अध्याय
19. गोरा अध्याय
20. गोरा अध्याय